National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(64): 251-254
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ० दीपक कुमार पाठक
सहा० आचार्य-संस्कृत विभाग,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत, 284403

.

Correspondence:
डॉ० दीपक कुमार पाठक
सहा० आचार्य-संस्कृत विभाग,
नेहरु महाविद्यालय, ललितपुर,
उत्तर प्रदेश, भारत, 284403

वैदिक कालीन भारत में गणतंत्र व्यवस्था के तत्व : एक ऐतिहासिक-दार्शनिक अनुशीलन

डॉ० दीपक कुमार पाठक

सारांश (Abstract)

वैदिक कालीन भारत की राजनीतिक संरचना को सामान्यतः राजतंत्रात्मक माना जाता है, तथापि वैदिक वाङ्मय के सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है कि उस युग में गणतंत्रीय तत्त्व भी विकसित रूप में विद्यमान थे। ऋग्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण तथा महाभारत में सभा, समिति, विदथ, गण एवं संघ जैसी संस्थाओं का उल्लेख प्राप्त होता है, जो सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया, उत्तरदायित्व तथा धर्माधिष्ठित शासन-व्यवस्था के द्योतक हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक राजनीतिक संस्थाओं का ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतीय गणतंत्र की जड़ें अत्यंत प्राचीन हैं।

मुख्य कुंजी: गण, सभा, समिति, विदथ, धर्माधिष्ठित शासन, वैदिक राजनीति, लोकसत्ता

प्रस्तावना

भारतीय राजनीतिक चिंतन की परंपरा विश्व की प्राचीनतम परंपराओं में से एक है। आधुनिक लोकतंत्र को यद्यपि पाश्चात्य उपलब्धि माना जाता है, किंतु वैदिक साहित्य में सामूहिक शासन और परामर्शात्मक संस्थाओं के उल्लेख यह संकेत करते हैं कि लोकसहभागिता की भावना अत्यंत प्राचीन है। K. P. Jayaswal ने Hindu Polity में प्रतिपादित किया कि भारत में गणराज्य प्रणाली ईसा पूर्व सहस्राब्दियों से विकसित थी। R. C. Majumdar तथा A. L. Basham ने भी इस मत का समर्थन किया है।

वैदिक साहित्य में राजनीतिक संस्थाएँ

वैदिक साहित्य में राजनीतिक संस्थाओं का स्वरूप अत्यंत विकसित, बहुस्तरीय और समाजआधारित - था। यह धारणा कि वैदिक काल केवल राजतंत्रीय व्यवस्था परआधारित था, आंशिक सत्य है; वस्तुतः उस काल में गणतंत्रीय, सामूहिक तथा परामर्शात्मक संस्थाओं का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रमुख स्रोत हैं—ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा शतपथ ब्राह्मण आदि। वैदिक साहित्य में उल्लिखित प्रमुख राजनीतिक संस्थाओं का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत है—

सभा

ऋग्वेद में सभा का मिलता है। सभा अपेक्षाकृत वरिष्ठ, प्रतिष्ठित एवं विद्वान व्यक्तियों की परिषद् थी। जहाँ न्यायिक एवं परामर्शात्मक कार्य संपन्न होते थे। "**अस्माकं मित्रं सभासु...**"[1] सभा राजा के कार्यों की समीक्षा करती थी। इससे उत्तरदायित्व की भावना स्पष्ट होती है। 'सभा' वैदिक काल की एक प्रमुख राजनीतिक संस्था थी।

सभा की विशेषताएँ:

- नीति-निर्माण में सहभागिता
- न्यायिक कार्य
- राजा को परामर्श देना
- युद्ध एवं शांति विषयक विचार-विमर्श

सभा को आधुनिक अर्थ में 'उच्च सदन' या 'परिषद्' के समकक्ष माना जा सकता है।

समिति-

वैदिक काल में समिति अधिक व्यापक और जन-आधारित जनसभा थी। अथर्ववेद में कहा गया है "समितिं नः प्रजापतिः..."[2] समिति का कार्य राजा का चयन अथवा अनुमोदन था। इससे निर्वाचन-प्रणाली के प्रारंभिक स्वरूप का संकेत मिलता है। ऋग्वेद में सूक्त स्पष्ट रूप से सामाजिक एवं परामर्शात्मक एकता का उद्घोष करता है—"संगच्छध्वं सं वदध्वं" तथा "समानो मन्त्रः समितिः समानी"[3] जैसे मंत्र सामूहिक विचारविमर्श-, समान उद्देश्य और एकमत निर्णय की भावना को व्यक्त करते हैं। यहाँ 'समिति' शब्द का प्रयोग यह संकेत देता है कि वैदिक समाज में ऐसी जनआधारित संस्थाएँ विद्यमान थीं-, जहाँ लोग मिलकर विचार करते थे और सामूहिक निर्णय लेते थे। इस प्रकार 10.191 सूक्त को वैदिक राजनीतिक चेतना तथा प्रारंभिक लोकतांत्रिक प्रवृत्ति का दार्शनिक आधार माना जा सकता है। समिति का उल्लेख मिलता है।

कार्य:

- राजा के चयन या अनुमोदन में भूमिका
- लोकमत का प्रतिनिधित्व
- नीतियों पर सामूहिक निर्णय

समिति को प्राचीन लोकतांत्रिक चेतना का द्योतक माना जाता है।

विदथ-

ऋग्वेद में 'विदथ' वैदिक काल की एक अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी सामुदायिक संस्था के रूप में उल्लिखित है। विदथ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है और यह केवल धार्मिक सभा न होकर सामाजिक, सैन्य तथा राजनीतिक कार्यों का भी केंद्र था। विदथ में जनसमूह एकत्र होकर यज्ञीय अनुष्ठान, युद्धसंबंधी - योजनाएँ, दानवितरण तथा सामूहिक निर्णय करता था। विद्वानों के - मतानुसार यह संस्था सभा और समिति से भी प्राचीन थी तथा उसमें पुरुष दोनों की सहभागिता संभव थी-स्त्री, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में सार्वजनिक जीवन में व्यापक भागीदारी का तत्व विद्यमान था। विदथ वैदिक जनजीवन की सामूहिक चेतना, परामर्श परंपरा और आरंभिक राजनीतिक संगठन का द्योतक था, जिसने आगे चलकर सभा, समिति और गण जैसी संस्थाओं के विकास की आधारभूमि तैयार की

कार्य-क्षेत्र:

- सैन्य संगठन
- धार्मिक अनुष्ठान
- सामाजिक और आर्थिक आयोजन

विदथ सामूहिक सहभागिता का मंच था, जहाँ स्त्री-पुरुष दोनों की उपस्थिति संभव थी।

गण और संघ

वैदिक एवं उत्तरवैदिक साहित्य में 'गण' और 'संघ' ऐसी राजनीतिकसामाजिक संस्थाएँ थीं-, जिनमें सामूहिक नेतृत्व और परामर्शात्मक शासन की भावना निहित थी। अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थ में 'गण' शब्द का प्रयोग समूह, कुल या कबीलाई संगठन के अर्थ में मिलता है, जहाँ सत्ता किसी एक निरंकुश व्यक्ति के हाथ में न होकर अनेक प्रमुख व्यक्तियों के सामूहिक नियंत्रण में होती थी। 'संघ' अपेक्षाकृत अधिक संगठित रूप था, जिसमें समान हितों वाले समूह सामूहिक निर्णय लेते थे। यह व्यवस्था आगे चलकर महाजनपद काल के गणराज्यों—जैसे लिच्छवि आदि—में विकसित रूप में दिखाई देती है। गण और संघ की परंपरा वैदिक राजनीतिक चेतना में लोकतांत्रिक तत्वों की उपस्थिति का संकेत देती है, जहाँ निर्णय बहुमत, सहमति या परिषद् के माध्यम से लिए जाते थे और नेतृत्व उत्तरदायी स्वरूप का होता था। बाद में यही परंपरा महाजनपद काल के गणराज्यों (जैसे लिच्छवि) में विकसित हुई।

गण की विशेषताएँ:

- कुल या कबीलाई संगठन
- सामूहिक नेतृत्व
- निर्णय सामूहिक सहमति से

दार्शनिक आधार : ऋत और धर्म

वैदिक राजनीतिक चिंतन का **दार्शनिक आधार 'ऋत' और 'धर्म'** की अवधारणाओं में निहित है। 'ऋत' (Ṛ ta) वैदिक साहित्य में विश्व-व्यापी नैतिक-सामाजिक व्यवस्था, सत्य और cosmic order का सिद्धांत है। ऋग्वेद में ऋत को वह सार्वभौम[4] नियम माना गया है जिसके अधीन देवता, प्रकृति और मनुष्य सभी संचालित होते हैं। यह केवल प्राकृतिक नियम नहीं, बल्कि नैतिक-सत्य का भी प्रतीक है। वरुण जैसे देवता 'ऋतस्य गोपा'[5] (ऋत के रक्षक) कहे गए हैं, जिससे स्पष्ट है कि व्यवस्था और न्याय का मूलाधार ऋत था। वैदिक राजसत्ता भी इसी ऋत के अधीन समझी गई—अर्थात् राजा को शासन करते समय सार्वभौमिक नैतिक व्यवस्था का पालन करना अनिवार्य था। ऋग्वेद (10.190) में ऋत को विश्व-व्यवस्था का आधार कहा गया है।

उत्तरवैदिक काल में यही 'ऋत' विकसित होकर 'धर्म' की व्यापक संकल्पना में परिणत हुआ। शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य ब्राह्मण ग्रंथों में धर्म को सामाजिक कर्तव्य, आचार और न्याय के रूप में प्रतिपादित किया गया है। धर्म का सिद्धांत उत्तरवैदिक काल में अधिक स्पष्ट हुआ—"धर्मो रक्षति रक्षितः"[6] यह धर्म वह सिद्धांत था जो व्यक्ति, समाज और राज्य—तीनों को नियंत्रित करता था। राजा को 'धर्मस्य रक्षक' माना गया, न कि धर्म से ऊपर।

राजसत्ता

वैदिक साहित्य में राजसत्ता का स्वरूप धर्माधिष्ठित, उत्तरदायी तथा परामर्शनियंत्रित था।- ऋग्वेद में 'राजन्' को जनसमूह का संरक्षक और वीर नेतृत्वकर्ता बताया गया है, जो युद्ध में अग्रणी तथा शांति में लोकपालक होता है। अथर्ववेद (विशेषतः राजाभिषेक सूक्त) में राजा के अभिषेक, उसकी प्रजापालन की प्रतिज्ञा और राज्य की स्थिरता के लिए देवआशीर्वाद का वर्णन मिलता है।[7] - राजा निरंकुश नहीं था; वह 'धर्म' के अधीन माना गया और सभासमिति जैसी संस्थाओं से -परामर्श लेकर कार्य करता था। उसका प्‍्रमुख कर्तव्य था—प्रजा की रक्षा, न्याय की स्थापना, शत्रुओं से सुरक्षा तथा सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण। उत्तरवैदिक ग्रंथों में राजसूय और वाजपेय जैसे अनुष्ठानों के माध्यम से राजसत्ता को वैधता प्रदान की गई, परंतु यह वैधता भी सामाजिक स्वीकृति और धार्मिक मर्यादा पर आधारित थी। इस प्रकार वैदिक राजसत्ता दैवीअधिकार से अधिक धर्म-, लोकसम्मति और उत्तरदायित्व पर आधारित शासनव्यवस्था का रूप प्रस्तुत -करती है। राजा 'धर्म' के अधीन था, न कि धर्म राजा के अधीन।

राजा के कर्तव्य:

- प्रजा-पालन
- धर्म-रक्षा
- न्याय-प्रदान
- शत्रु से रक्षा

पुरोहित एवं मंत्रिपरिषद्

वैदिक राजनीतिक व्यवस्था में **पुरोहित एवं मंत्रिपरिषद्** राजसत्ता के महत्त्वपूर्ण अंग थे। राजा यद्यपि शासन का प्रधान होता था, तथापि वह निर्णय-प्रक्रिया में पूर्णतः स्वेच्छाचारी नहीं था; उसे विद्वानों, ऋत्विजों तथा प्रमुख जनों के परामर्श से कार्य करना होता था।

ऋग्वेद में 'पुरोहित' को यज्ञ का प्रधान संचालक और राजकीय कार्यों का मार्गदर्शक कहा गया है—अग्नि को भी "पुरोहित" (अग्निमीळे पुरोहितम्) कहा गया है, जो नेतृत्व और अग्रगामिता का प्रतीक है। इससे स्पष्ट है कि पुरोहित केवल धार्मिक कर्मकाण्डी नहीं, बल्कि नीति-निर्देशक एवं राजकीय सलाहकार भी था। युद्ध, संधि, राज्याभिषेक तथा महत्त्वपूर्ण निर्णयों में उसका विशेष प्रभाव रहता था।

उत्तरवैदिक ग्रंथों, विशेषतः शतपथ ब्राह्मण में राजसूय यज्ञ के प्रसंगों से ज्ञात होता है कि राजा विभिन्न अधिकारियों और परामर्शदाताओं से घिरा रहता था। यही परामर्शदाता समूह आगे चलकर 'मंत्रिपरिषद्' के रूप में विकसित हुआ। मंत्रिपरिषद् का कार्य था—राजा को नीति, प्रशासन, युद्ध-नीति, कर-व्यवस्था और न्याय संबंधी विषयों में मार्गदर्शन देना।

निर्वाचन एवं उत्तरदायित्व

निर्वाचन एवं उत्तरदायित्व की अवधारणा वैदिक-उत्तरवैदिक साहित्य में स्पष्ट संकेतों के रूप में उपलब्ध होती है। ऐतरेय ब्राह्मण में विभिन्न शासन-रूपों—**राजा, सम्राट, स्वराज्य, वैराज्य** आदि—का उल्लेख मिलता है (विशेषतः अष्टम पंचिका में), जिससे ज्ञात होता है कि उस काल में सत्ता के विविध रूपों की सैद्धांतिक समझ विकसित हो चुकी थी। यहाँ 'राजा' सीमित क्षेत्र का शासक, 'सम्राट' व्यापक अधिपत्य वाला, और 'स्वराज्य' अपेक्षाकृत स्वतंत्र शासन-संरचना का द्योतक माना गया है।

वैदिक परंपरा में राजा का अभिषेक केवल अनुष्ठानिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक अनुमोदन का प्रतीक था। ऋग्वेद में 'सभा' और 'समिति' जैसी संस्थाओं के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि राजा को इन परिषदों के परामर्श से शासन करना पड़ता था। वह इनके प्रति उत्तरदायी था, और उसका दायित्व प्रजा-पालन, धर्म-रक्षा तथा न्याय-स्थापना था।

यदि राजा धर्म से विचलित होता, तो उसकी स्थिति अस्थिर मानी जाती थी। उत्तरवैदिक परंपरा में यह विचार विकसित हुआ कि अधर्मी शासक पदच्युत भी किया जा सकता है—यह धारणा राजसत्ता की निरंकुशता को सीमित करती है। इस प्रकार निर्वाचन की प्रक्रिया भले ही आधुनिक मतपेटी आधारित न-रही हो, किंतु **सामूहिक अनुमोदन, अभिषेकनियंत्रण-संस्कार और परिषद्-** के माध्यम से उत्तरदायी शासन की भावना विद्यमान थी। यह भारतीय राजनीतिक चिंतन में प्रारंभिक उत्तरदायित्व और सीमित राजसत्ता का महत्त्वपूर्ण संकेत है।

ग्राम एवं विश् संगठन

वैदिक समाज की राजनीतिक-सामाजिक संरचना का आधार **ग्राम एवं विश् संगठन** था, जो क्रमशः परिवार से लेकर जन-राष्ट्र तक की प्रशासनिक व्यवस्था को व्यवस्थित करता था। ऋग्वेद में 'ग्राम', 'विश्' और 'जन' जैसे शब्दों का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। 'ग्राम' मूलतः परिवारों के समूह से बना स्थानीय निवास-समुदाय था, जिसका नेतृत्व 'ग्रामणी' करता था। ग्राम आर्थिक, सामाजिक तथा रक्षा संबंधी कार्यों की आधारभूत इकाई था।

कई ग्रामों के समूह को 'विश्' कहा जाता था। 'विश्' शब्द का अर्थ प्रजा या जनसमूह भी है। यह संगठन व्यापक सामाजिक-राजनीतिक इकाई था, जो राजा की प्रजा का मुख्य आधार बनता था। विश् के प्रमुख को कभी-कभी 'विशपति' कहा गया है, जो उस समुदाय का प्रतिनिधि होता था।

विशों के समूह से 'जन' का निर्माण होता था, और जनों के संघटन से 'राष्ट्र' की अवधारणा विकसित हुई। इस प्रकार वैदिक शासन-व्यवस्था नीचे से ऊपर की ओर संगठित थी—कुल → ग्राम → विश् → जन → राष्ट्र। यह संरचना दर्शाती है कि वैदिक राजनीति केवल

राजसत्ता-केन्द्रित न होकर स्थानीय इकाइयों पर आधारित थी, जहाँ प्रशासनिक उत्तरदायित्व और सामूहिक सहभागिता का तत्व विद्यमान था।

राजनीतिक संरचना

वैदिक काल की **राजनीतिक संरचना** बहुस्तरीय, परामर्शात्मक तथा धर्माधारित थी। इसका आधार समाज की क्रमिक इकाइयों पर टिका था—कुल (परिवार) से लेकर ग्राम, विश्, जन और अंततः राष्ट्र तक। ऋग्वेद में 'जन', 'विश्' और 'राजन्' जैसे शब्दों से स्पष्ट होता है कि शासन-व्यवस्था सामाजिक संगठनों के क्रमिक विकास पर आधारित थी। ग्राम स्थानीय प्रशासन की इकाई था, जिसका नेतृत्व ग्रामणी करता था; अनेक ग्राम मिलकर 'विश्' बनाते थे, और विशों के समूह से 'जन' का निर्माण होता था।

इस संरचना के शीर्ष पर 'राजा' होता था, किंतु उसकी सत्ता निरंकुश नहीं थी। उसे सभा, समिति तथा पुरोहितों के परामर्श से कार्य करना पड़ता था। अथर्ववेद में राजाभिषेक सूक्तों के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि राजा की वैधता दैवी अनुमोदन और लोकस्वीकृति दोनों पर आधारित है। सभा अपेक्षाकृत विशिष्ट जनों की परिषद् थी, जबकि समिति व्यापक जन-संस्था थी, जो सामूहिक निर्णय और लोकमत का प्रतिनिधित्व करती थी।

- कुल → ग्राम → विश् → जन → राष्ट्र

इससे स्पष्ट है कि शासन नीचे से ऊपर की ओर संगठित था।

तुलनात्मक अध्ययन : भारतीय गणराज्य और ग्रीक नगर-राज्य

प्राचीन भारत के गणराज्य और ग्रीक नगर-राज्य, विशेषतः Athens, दोनों ही प्राचीन विश्व में लोकतांत्रिक प्रयोगों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं, किन्तु उनकी संरचना और दार्शनिक आधार भिन्न थे।

ग्रीस में एथेंस जैसे नगर-राज्यों में **प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy)** का विकास हुआ, जहाँ नागरिक स्वयं सभा (Ekklesia) में उपस्थित होकर विधि-निर्माण और नीतिगत निर्णयों में भाग लेते थे। शासन की सर्वोच्च सत्ता नागरिक-समुदाय में निहित थी, यद्यपि यह अधिकार केवल स्वतंत्र पुरुष नागरिकों तक सीमित था; स्त्रियाँ, दास और विदेशी इससे बाहर थे।

इसके विपरीत भारतीय गणराज्य—जैसे लिच्छवि और मल्ल—परिषद्-प्रधान व्यवस्था पर आधारित थे। यहाँ शासन का संचालन गण-सभा या परिषद् के माध्यम से होता था, जिसमें कुलीन अथवा प्रतिनिधि सदस्य भाग लेते थे। वैदिक परंपरा में 'सभा' और 'समिति' जैसी संस्थाएँ इसी सामूहिक विचार-प्रक्रिया का आधार थीं।भारतीय व्यवस्था का दार्शनिक आधार **'धर्म'** था—अर्थात् शासन नैतिक मर्यादा, कर्तव्य और सामाजिक संतुलन से नियंत्रित था।

इस प्रकार जहाँ एथेंस में **प्रत्यक्ष जनसत्ता और नागरिक भागीदारी** पर बल था, वहीं भारतीय गणराज्यों में **परिषद्-आधारित, प्रतिनिधि-प्रधान और धर्माधारित शासन** प्रमुख था। ग्रीक मॉडल राजनीतिक अधिकार को केंद्र में रखता था, जबकि भारतीय मॉडल में अधिकार के साथ-साथ नैतिक उत्तरदायित्व और सामाजिक समन्वय को अधिक महत्त्व दिया गया। दोनों ही परंपराएँ मानव इतिहास में लोकतांत्रिक विचार के भिन्न किन्तु महत्त्वपूर्ण आयाम प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष

वैदिक साहित्य के समग्र अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस काल की राजनीतिक व्यवस्था न तो पूर्णतः निरंकुश राजतंत्र थी और न ही आधुनिक अर्थों में लोकतंत्र, बल्कि वह धर्माधारित, परामर्शात्मक तथा बहुस्तरीय संरचना पर आधारित थी। ऋग्वेद में सभा, समिति, विदथ, जन, विश् आदि संस्थाओं का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि शासन-प्रक्रिया में सामूहिक विचार-विमर्श और सामाजिक सहभागिता का महत्त्व था। अथर्ववेद के राजाभिषेक सूक्तों से ज्ञात होता है कि राजा की सत्ता धर्म, लोकसम्मति और दैवी अनुमोदन से नियंत्रित थी, न कि केवल व्यक्तिगत अधिकार से।

ग्राम से राष्ट्र तक की क्रमिक राजनीतिक संरचना यह दर्शाती है कि प्रशासनिक संगठन नीचे से ऊपर की ओर विकसित था। पुरोहित, मंत्रिपरिषद् तथा सभा-समिति जैसी संस्थाएँ राजसत्ता पर नैतिक और परामर्शात्मक नियंत्रण बनाए रखती थीं। इस प्रकार वैदिक राजनीतिक चिंतन में उत्तरदायित्व, सामूहिकता, धर्माधिष्ठान और लोककल्याण के सिद्धांतों का समन्वित रूप मिलता है, जो भारतीय राजनीतिक परंपरा की प्राचीन और सुदृढ़ आधारशिला को प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची (References)

1. महाभारत, शान्ति पर्व।
2. ऋग्वेद।
3. अथर्ववेद।
4. ऐतरेय ब्राह्मण।
5. शतपथ ब्राह्मण।
6. महाभारत।
7. K. P. Jayaswal. Hindu Polity.
8. R. C. Majumdar. Ancient India.
9. A. L. Basham. The Wonder That Was India.

पाद टिप्पणी

[1] ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 34, मंत्र 6।

[2] अथर्ववेद, काण्ड 7, सूक्त 12, मंत्र 1

[3] ऋग्वेद 1.95; 10.191

[4] ऋग्वेद 10.190

[5] ऋग्वेद 1.25.1

[6] मनुस्मृति 8.15

[7] अथर्ववेद 4.22